Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूलदेई—कुमाऊँ का पुष्पोत्सव पर्व

श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

कुमाऊं-गढ़वाल में मेष संक्रान्ति, जो प्रति वर्ष १४ मार्च के लगभग होती है, फूल संक्रान्ति या फूलदेई कहलाती है। इस दिन गांव के बालक और बालिकाएं तड़के उठकर कांसे की थालियों में बुरूंस के लाल, प्यौली (पिंगला) के पीले, शिलकोड़ा के श्वेत पुष्पों को भरकर पुष्पोत्सव के लिए निकल पड़ते हैं। जाड़े की समाप्ति और वसन्त ऋतु के आरंभ का संदेश लानेवाला यह उत्सव अपने साथ अनेक परंपराओं को संजोये कूर्माचल के जनमानस को उल्लसित और मुखरित होने का अवसर प्रदान करता है।

इस पर्वत प्रदेश में सौर मास का प्रचलन है और यह दिन सौर चैत्र मास का प्रथम दिन होने के कारण नव वर्ष का आरंभ भी माना जाता है।

इस पर्व के अवसर पर वन-उपवन, गिरि-पर्वत, लता-गुल्म जो अब तक हिम और पाले की मार से सिकुड़े, सिमटे और ठिठुरे थे, सहसा ही नयी चेतना से जागते हुए दिखलाई देते हैं। वनों में हिम पिघलने लगती है। बुरूंस के खिले हुए वृक्षों की अनुपम लाली सर्वत्र छा जाती है। इस पर्व का यही सबसे सुन्दर और सबसे सुलभ फूल है। बुरूंस, जिसे अंग्रेजी में रोडोडेण्ड्रौन कहते हैं, पचास-साठ फुट ऊंचा सदाबहार वृक्ष है। रोडोडेण्ड्रौन का हिन्दी रूपान्तर रोदसी द्रुम हो सकता है, वास्तव में तुषार के संताप से पीड़ित देवदारु जैसे शीत रुद्ध वनों पर उषोदय की सी स्वर्ग की छटा लानेवाले इस वृक्ष को रोदसी (धरा और स्वर्ग) संज्ञा देना उपयुक्त ही है। इसकी चतुर्दिक फैली शाखाओं पर शीत ऋतु की समाप्ति से पहले ही सैकड़ों गोलाकार पुष्प खिल उठते हैं। एक पुष्प एक-एक वित्ते के लगभग चौड़ा गोलाकार स्तवक सा होता है। प्रत्येक स्तवक पर चार पांच इंच लम्बे कनेर के आकार के किन्तु उससे काफी बड़े और लाल रंग के गहरी कटोरी की भांति के पुष्पदल होते हैं। पुष्प कोटर के तले थोड़ा अत्यन्त स्वादिष्ट पारदर्शक मधु जमा रहता है। इस ऋतु में बहुधा बालक इन दिनों वृक्षों पर चढ़े तिनकों की खोखली नली से मधु चूसते दिखलाई देते हैं। पंखुड़ियों का कच्चा टपकिया (सलाद) खाया जाता है अथवा उनकी पकौड़ियां बनायी जाती हैं। अधिक ऊंचे पहाड़ों पर इस पुष्प की पंखुड़ियों की लालिमा कम होती-होती हलकी नीली अथवा श्वेत हो जाती है। खिले हुए बुरूंस पेड़ की छटा पर्वत प्रदेश के अनेक लोकगीतों का विषय है। एक पहाड़ी लोकगीत का पद है—

पारा भीड़ा बुरूंस फूलो, मैं जें कौंनू मेरी हीरू।

(अर्थात् उस पार पहाड़ी पर बुरूंस खिला है, मैं समझा वह मेरी (प्रेयसी) हीरू है।)

दूसरा इसी भांति का पुष्प जो रुक्ष शिलाओं और काली काई से मंडित चट्टानों पर इस पर्व पर स्थान-स्थान पर उगता है वह है शिलकोड़ा या पाषाणभेद। इस नन्हें पौदे पर वसन्त के प्रथम अंकुर आने से पहले ही किंचित् लालिमा लिए श्वेत फूल ऐसे निकल पड़ते हैं मानों वसन्त के आगमन के उल्लास में काली चट्टानें भी पुष्पहास से मुस्करा उठी हों। इसी पुष्प के निकट हिरनखुरी के आकार की बेलों पर इन दिनों अत्यन्त सुकुमार प्यौली (पिंगला) का फूल भी उग आता है।

फूलदेई के दिन कुमार-कुमारियां पहले अपने घर के देहली और द्वार की पूजा करके उन पर पुष्प और अक्षत बिखेर कर कुमारियां और छोटे बालक गाते-बजाते गांव के प्रत्येक घर पर बारी-बारी से पहुंचते हैं। प्रत्येक घर की देहली पर पुष्प अर्पण करके गृहस्वामिनी से चावल, गुड़ और दक्षिणा मांगते हैं। बहुधा देहलियों पर पुष्प चढ़ाते समय यह गीत गाया जाता है—

फूलदेई	अर्थात्	फूलदेई
छम्मादेई	"	क्षमाशील देहली
दौणी दूवार	"	द्वार दक्षिण (कृपालु) (हों)
भर भखार	"	भण्डार भर जाएं।

घर-घर की द्वारपूजा के समाप्त होते-होते बालक-बालिकाओं की थालियां फूलों के स्थान पर चावलों, गुड़ की डलियों तथा पैसों से भर जाती हैं। घर लौटने पर फूलों के पराग और केसरों से सने चावल बीनकर भिगो दिये जाते हैं। सन्ध्या समय भीगे चावलों को पीसकर उनका 'साया' (घी में तला व्यंजन-विशेष) पकाकर घर-घर खाया जाता है।

पश्चिम पर्वत की घाटियों में, विशेषत: गढ़वाल में, यह पर्व पूरे चैत्र मास तक चलता है। प्रतिदिन सबेरे बालक-बालिकाएं अपने और अपने पड़ोसियों के गृहद्वारों पर पुष्प अर्पण करते हैं। बादी लोग (गा-बजाकर जीविकोपार्जन करने-वाली घुमक्कड़ जाति के लोग) इस मास घर-घर जाकर ऋतुरैण नामक गीतों को गाकर नववर्ष के उपहार मांगते हैं। गृहवधू को इसी मास अपने भाइयों से भेंटोली (नववर्ष के वस्त्र तथा अन्य उपहार) मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मास घरों के आंगनों और खलियानों के किनारे लगाये गये आड़ू, सेब, खुबानी और आलूबुखारे के वृक्षों में भी फूल आ जाते हैं। पुष्पों से लदे किन्तु पत्रहीन ये वृक्ष अनेकानेक रंग के विशाल पुष्पों से लगते हैं। पद्म वृक्षों पर भी इन्हीं दिनों असंख्य गुलाबी रंग के फूल खिल उठते हैं। आड़ू (पीच) और पद्म (चेरी) के फूलों से लदी डालियों की अनिर्वचनीय छटा पर ही योरपीय कवियों ने सुकोमल सुन्दर बाला के मुखमंडल की कान्ति की उपमा 'चेरी-ब्लॉसम' अथवा 'पीच-ब्लॉसम' से दी है। इन पुष्पों के शुभ्र परिधान को पहने पर्वत पार्श्वों की चैत मास की शोभा अवर्णनीय है।

फूलदेई का त्योहार घर के उद्यान में उगे फूलों से नहीं मनाया जाता। उसके लिए वनैले फूल ही उपयोग में आते हैं। वृक्षों और पौधों में नये-नये अंकुर आने लगते हैं। अंकुरों और नये किसलयों के प्रति बधुओं की वात्सल्य भावना उमड़ उठती है, और शतावर के वृक्षों में अत्यन्त सुकोमल, केरुवा (एस्परेगस) पल्लव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पल्लवों की सब्जी बड़ी स्वादिष्ट होती है किन्तु इस सुकुमार कोंपल को गृहस्वामिनी तब तक नहीं तोड़ती जब तक उसके मैके से 'भेंटोली' नहीं आ जाती। कहीं-कहीं तो नववधू के सम्मुख 'चैत्र' शब्द का उच्चारण करना तब तक निषिद्ध रहता है जब तक उसको नववर्ष के उपहार नहीं मिल जाते।

इस मास संवत्सर प्रतिपदा के आने पर घरों के अन्दर छोटे-छोटे लकड़ी के पटरों में मिट्टी बिछाकर मकई, उड़द तथा जौ के दाने बोकर 'जवारा' या 'हरियाला' उगाया जाता है। दशमी के दिन जवारे के पीले-पीले तृणों को नर, नारी अपने सिरों पर धारण करते हैं। बच्चों की टोपियों और कानों में ये हरे तृण खोंस दिये जाते हैं। प्रकृति से मानों तादात्म्य रखने के लिए उन्हें भी इन सुकुमार अंकुरों के कर्णावतंस पहनाये जाते हैं। पुष्पोत्सव का यह फूलदेई पर्व हिमालय की निचली घाटियों में राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाया जाता है। तराई से मिले हुए गढ़वाल के उस क्षेत्र को सलाण (शालवन) कहते हैं। अलमोड़ा पिथौरागढ़ में शाल्मलि तथा पनार नदियों की शारदा या काली से मिली घाटियों में भी शालवन हैं और यह इलाका वहां शालम कहलाता है। वादी युवक युवतियां फूलदेई त्योहार के दिन से ही अपना उत्सव मनाती हैं। बसन्त के आगमन से वृक्ष पुष्प सम्भार से मनोहर हो उठते हैं। वायु में फूलों की सुगन्ध व्याप्त हो जाती है। प्राचीन पाली साहित्य में उद्यान क्रीड़ा का यह उत्सव 'शालभंजिका' कहलाता था। युवतियों की शाल वृक्षों के फूलों से लदी डालियों को झुकाकर पुष्पों का चयन करती हुई आमोद-प्रमोद में निमग्न मूर्तियां आज भी अनेक प्राचीन मन्दिरों की वेदियों पर अंकित मिलती हैं। कहा जाता है कि इसी शालभंजिका मुद्रा में बुद्ध की माता उद्यान क्रीड़ा में संलग्न थी जब बुद्ध का लुम्बिनी वन में जन्म हुआ था। कालान्तर में प्राचीन नारी की यह मुद्रा हमारे स्थापत्य की एक प्रमुख वस्तु बन गयी और वनदेवी की रमणीय कान्ति का प्रतीक मानी जाने लगी। पर्वत प्रदेश के प्राचीन स्थलों और देव मन्दिरों के किनारे इन दिनों शिलंग के वृक्ष फूल उठते हैं। मौलसिरी के प्रकार का किन्तु वट के समान विशाल और समावृत यह वृक्ष हिमालय के पाद-पर्वतों में ही होता है। चैत्र मास में इसके अत्यन्त छोटे पीले पुष्पों की गन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है। अनेक घाटियों में स्थित गांवों का नामकरण उनमें पाये जानेवाले प्राचीन शिलंग वृक्षों के ही नाम पर टूटाशिलंग, जों-शिलंग, चौरीशिलंग अथवा सातशिलंग पड़ा है। अंग्रेजी में इस वृक्ष को इसकी मनमोहक सुगन्ध के लिए "ऑइल्या फ्रैग्रेन्सा" कहते हैं।

पतले नालों और नदी तटों पर इन दिनों श्वेत गुलाब की जाति की कंटीली झाड़ी पर असंख्य पुष्प आने लगते हैं। ये श्वेत पुष्प पहाड़ी बोली में 'कुन्द' या 'कुंज' कहलाते हैं। श्वेत कुन्द से लदी झाड़ियां वनों की अतीव मनोहारी छटा के दृश्य तो हैं ही साथ ही इन पुष्पों की सुगन्ध इतनी तीव्र होती है कि अधिक देर तक कुन्द से सुवासित नदी तट पर रहना सर्दी जुकाम के प्रकोप का कारण माना जाता है। मैदान क्षेत्र का जो श्वेत पुष्प कुन्द कहलाता है वह इस कुन्द से बहुत छोटा होता है। बसन्त पंचमी से पहले दिन जिस कुन्द चतुर्थी का पर्व मनाने की प्रथा मध्य-प्रदेश में है वह इन पर्वतों पर नहीं होता और बसन्त पंचमी तक तो जैसे भी इस हिमप्रदेश में सभी पुष्प और सभी वनस्पति निष्प्राण-प्राय रहते हैं। इन घाटियों के लिए तो बसन्त का आरम्भ फूलदेई का ही पर्व है।

फूलदेई कूर्मांचल प्रदेश की वनश्री का जाड़े की गहरी नींद के उपरान्त मानों जागकर पुष्पाभरण धारण करके सुहावने बसन्त के आगमन का संदेश है। इसके उपरान्त वैशाख मास नींद के उपरान्त मानों जागकर पुष्पाभरण धारण करके सुहावने आती है। इस प्रदेश के सामाजिक और कलात्मक जीवन का अति प्राचीन काल से यह मंगलोत्सव एक आवश्यक अंग बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar